बैनी प्रसाद (मृत) द्वारा विधिक वारिसान

बनाम

दुर्गा देवी

सिवल अपील क्रमांक 2009 के 6182–6183

02 फरवरी 2023

(न्या. बी आर गवई एवं सी टी रविकुमार)

संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882: धारा 51 – के अंतर्गत संरक्षण –

प्रतिवादी द्वारा मुकदमा भूमि पर कब्ज़ा और अपीलकर्ता द्वारा बनाई गई संरचना के गिरवाने और स्थायी निषेधाज्ञा के द्वारा अपीलकर्ता को उक्त भूमि में हस्तक्षेप से रोकने हेतु लगाया गया है –

– अपीलकर्ता का तर्क है कि दो साल पहले उसने भूमि में बरामदे का निर्माण अपने आवासीय भाग में यह सोच कर किया था कि उक्त भूमि उसकी है –

– सूट में फैसला प्रतिवादी के पक्ष में सुनाया गया

– हालाँकि, प्रथम अपीलीय अदालत ने सम्मति के सिद्धांतों के आधार पर माना कि प्रतिवादी भूमि पर बनाये गये ढांचे का विध्वंस कर कब्ज़ा पाने का हकदार नहीं है

हालाँकि, मुआवजे का हकदार है – उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय अदालत के आदेश को रद्द कर दिया और ट्रायल कोर्ट का बहाल कर दिया–

– इसके खिलाफ का पुनःनिरिक्षण आवेदन भी वहां खारिज कर दिया गया –

अपील में यह अभिनिरधित किया गया कि : अपीलकर्ता को धारा 51 के अर्थ और उद्देश्य के लिए 'हस्तान्तरी ' के रूप में नहीं माना जा सकता है

धारा 51 को आकर्षित करने के लिए भूमि पर काबिज व्यक्ति के पास मालिकाना हक के प्रकार वाला कब्जा होना चाहिए जो असली मालिक के मालिकाना हक के प्रतिकूल हो ।

– निचली अदालतों के समवर्ती निष्कर्ष कि

प्रतिवादी प्रश्नाधीन भूमि का मालिक है और अपीलकर्ताओं ने उक्त भूमि पर अतिक्रमण कर और मालिकाना हक के नहीं होने को नजरअंदाज कर अपने जोखिम पर उस पर संरचनाएँ बनाईं – इस प्रकार, अपीलकर्ता धारा 51 के तहत प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विध्वंस एवं कब्जे के संबंध में किए गए संशोधन की बहाली के हकदार नहीं हैं।

– स्वीकृति के सिद्धांत के अनुप्रयोग को प्रतिपादित करने वाले पक्ष होने के कारण मूल अपीलकर्ता का दायित्व है कि इस तथ्य को स्थापित करे कि

प्रतिवादी ने अपने कानूनी अधिकार के उल्लंघन को स्वीकार कर लिया था
और फिर भी कुछ नहीं किया और इस तरह निर्माण की अनुमति दी
– इसके अलावा, किसी कार्य या चूक द्वारा गलतबयानी के अभाव
मात्र यह तथ्य कि प्रतिवादी ने कब्ज़ा वापस पाने के लिए न्यायालय जाने में कुछ उचित समय लिया उसे राहत इनकार करने का कारण नहीं बन सकती –
– कोई दोष, कानूनी त्रुटि, विकृति या प्रत्यक्ष अवैधता निष्कर्षों में नहीं पाया गया – इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय रद्द
किया जाता है और ट्रायल कोर्ट को बहाल कर दिया जाता है – स्वीकृति और विबन्धन का सिद्धांत
– साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा . 115.
कोर्ट ने अपील खारिज करते हुए
माना:
1.1 अपीलकर्ताओं के तर्क का आधार संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 51 पर आधारित है जो पूरी तरह से गलत है और गलत समझा गया. यह स्थिति सामने आ जाएगी जब इन अपीलों में उठाए गए ग्राउंड 'बी' के मुद्दे को ग्राउन्ड 'डी' के साथ जोड़ा जाएगा । ध्यान देने योग्य बात यह है कि ,
अपीलकर्ताओं ने प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री द्वारा किए गए संशोधन को उलटने का विरोध किया और संशोधन को कायम रखने का प्रयास विबंधन के सिद्धांत और टीपी अधिनियम के धारा 51 के आधार पर किया है। संकल्पनात्मक रूप में धारा 51, टीपी अधिनियम, और रोक के सिद्धांत धारा 115 साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अंतर्निहित सिद्धांत विरोधाभासी हैं और सह–अस्तित्व में नहीं रह सकते। [पैरा7][290–सी–डी]
1.2 मूल अपीलकर्ता यह स्थापित करने में विफल रहा कि वह टीपी अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत और उद्देश्य के लिए एक "हस्तांतरिती" है। प्रावधान को आकर्षित करने के लिए भूमि पे काबिज व्यक्ति को भूमि के स्वामित्व के तहत कब्ज़ा होना चाहिए, उसका कब्ज़ा केवल दूसरे के कब्ज़े से नहीं होना चाहिए।
लेकिन असली मालिक के मालिकाना हक के प्रतिकूल और इस विश्वास के अधीन होना चाहिए कि उसने प्रश्नअधीन संपत्ति पर वैध स्ववत्व हासिल कर लिया है और उसका स्वामी है। धारा 51 उपरोक्त तीन बातों को ही वैधानिक मान्यता देती है। मौजूदा मामले में, निचली अदालतों के

समवर्ती निष्कर्ष यह है कि प्रतिवादी प्रश्नाधीन भूमि का मालिक है और मूल अपीलकर्ताओं ने इस पर अतिक्रमण किया निर्माण खड़ा किया। निर्माण। अपीलकर्ता उपरोक्त तीन बातों को स्थापित करने में विफल रहे हैं। रिकार्ड में मौजूद साक्ष्य भी यह दिखाते है कि निर्माण भी अनुमोदित योजना के विचलन में किया गया था। [पैरा10][292–सी–ई]

1.3 समवर्ती निष्कर्षों के आलोक में स्वामित्व और अतिक्रमण के प्रश्नों पर, केवल यह माना जा सकता है कि विचाराधीन भूमि पर अतिक्रमण करने और मालिकाना हक की कमी को अनदेखी करने के बाद उसने स्वयं अपने जोखिम पर उस पर संरचनाएँ बनाईं। एक बार ऐसा पाए जाने पर, मूल अपीलकर्ता को टीपी अधिनियम के अंतर्गत और धारा 51, टीपी अधिनियम के उद्देश्य के लिए एक 'हस्तांतरिती' के रूप में व्यवहार नहीं किया जा सकता। इसलिए, अपीलकर्ता धारा 51, टीपी अधिनियम के प्रावधान के आश्रय के अंतर्गत प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विध्वंस एवं कब्जे के संबंध में किए गए संशोधन की बहाली के लिए हकदार नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा प्रतिकूल कब्जे की दलील नहीं लेना न्यायसंगत था और परिस्थितियों के अनुसार वह धारा51 टीपी अधिनियम के तहत 'हस्तांतरिती नहीं हैं अतः वह प्रतिवादी से विकाशन का मूल्य प्राप्त कर जमीन वापस दे देना या उसे प्रतिवादी द्वारा संपत्ति को बाजार मूल्य पर बेच देना विकाशन के बाजार मूल्य के बिना आक्षेप के कानूनी तौर पर हकदार नहीं है । [पैरा 11][292–एफ–एच; 293–ए]

1.4 जैसा भी मामला हो,विबंधन की अवधारणा को लागू करने के लिए प्रतिवादी को प्रत्येक कार्य या चूक को विशेष रूप से प्रस्तुत करना होगा जो वादी की ओर से अभ्यावेदन बने । [पैरा12][293–एफ]

1.5 साम्यता कानून का पालन करेगी और वह कानून के पक्ष में झुकेगी और इसके अलावा साम्यता का दावा करने के लिए पक्षकार को पिछले आचरण का स्पष्टीकरण देना होगा। [पैरा 14][295–जी]

1.6 ट्रायल कोर्ट ने तथ्यात्मक स्थिति पर ध्यान दिया कि विशिष्ट दावे को उठाने के बावजूद कि उसने बरामदे सहित अपने आवासीय मकान का निर्माण वर्ष 1986 में कराया परंतु अपीलकर्ता ने भूमि पर निर्माण के कथित तथ्य को स्थापित करने के लिए स्थानीय निकाय से भवन के पूर्ति प्रमाण पत्र को प्रस्तुत नहीं किया [पैरा16][296–एफ–जी]

1.7 जब प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी एक्स्ट पीडब्लू–18/ए दिनांक 22.09.1987 और एक्स्ट PW–12/A दिनांक 10.12.1987 के जारी होने पर ध्यान दिया तब उसे निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना था जो अभिलेखों से स्पष्ट हैं और ट्रायल कोर्ट द्वारा विधिवत विचार

किया गया था । सबसे पहले, मूल अपीलकर्ता ने स्वीकार के सिद्धांत के अनुप्रयोग को प्रतिपादित किया अतः इस तथ्य को स्थापित करने का दायित्व इसी पक्ष का था कि प्रतिवादी ने अपने कानूनी अधिकार के उल्लंघन को स्वीकार कर लिया था और खड़ा रहा और निर्माण की अनुमति दी। इस संबंध में, इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए था कि उसकी स्वयं की भूमि पर आवासीय भवन का निर्माण कार्य करते समय वर्ष 1986 में संबंधित भूमि पर निर्माण कार्य उसके द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार किया गया था इसके बावजूद वह स्थानीय प्राधिकारी से पूर्णता प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा। दूसरे, यदि उस तर्क को मान लिया जाए तो वह प्रतिवादी के सहमति के दावे को नहीं ले सकता क्योंकि यह उसका तर्क था कि प्रतिवादी ने प्रश्नगत भूमि वर्ष 1987 में ही खरीदी थी। तीसरा, प्रतिवादी की ओर से मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी साक्ष्य आपत्ति उठाने के तथ्य का खुलासा करते है कि "निर्माण कार्य को अंजाम देना किसी स्वामित्व या कम से कम एक दोषपूर्ण मालिकाना हक के अभाव में , मूल अपीलकर्ता अपने निर्माण जारी रखने के कृत्य को सद्भावपूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता। उक्त परिस्थितियों में, केवल मुक़दमा दायर करने में देरी , विशेषकर तब जब यह समय सीमा के अंदर ही दायर किया गया हो, को इस प्रकार स्वीकृति के बराबर नहीं रखा जाना चाहिए। प्रतिवादी ने 22.09.1987 को टेलीग्राफिक संदेश भेजने के बाद डिप्टी आयुक्त से संपर्क किया और अंततः रिपोर्ट प्राप्त की जिससे प्रकट हुआ कि 10.12.1987 को मूल अपीलकर्ता की ओर से अतिक्रमण किया गया है और फिर, 11.05.1988 को मुकदमा लाया गया । परिस्थितियों को देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने तुरंत मूल अपीलकर्ता के खिलाफ कार्यवाही नहीं की और इसलिए उसे अपने जमीन को अतिक्रमणकारी के कब्जे के छुड़ाने के अधिकार को जताने से वंचित रखना चाहिए बावजूद इसके कि उसने समय सीमा की निर्धारित अवधि के भीतर एक मुक़दमे में अतिक्रमित भूमि पर अपना स्वामित्व स्थापित किया ।[पैरा 17] [296–जीएच; 297–ए–एफ]

1.8 विबन्धन समता पर आधारित एक सिद्धांत है और इसका लक्ष्य केवल पक्षों के बीच न्याय को सुरक्षित करने के लिए है। सिद्धपरिस्थितियाँ जिसके अनुसार मूल अपीलकर्ता के पास संपत्ति का स्वामित्व नहीं था ,यह कि प्रतिवादी उसकी मालिक है, यह कि समवर्ती खोज यह है कि मूल अपीलकर्ता अतिक्रमणकर्ता था और यह कि प्रतिवादी द्वारा निर्माण के विरुद्ध आपत्ति उठाई गई थी, उसे जिसे स्वीकृति के नियम या विबंधन के नियम बंद नहीं करना चाहिए उसके द्वारा प्रतिवेदन बनाया गया जिससे मूल अपीलकर्ता को यह विश्वास हो गया कि उसने निर्माण के लिए सहमति दे दी है । (para 19) (298–A–C)

1.9 रिकॉर्ड में प्रस्तुत साक्ष्य सारी परिस्थितियाँ इस तथ्य को त्रुटिहीन रूप से इंगित करते है कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी की भूमि पर अतिक्रमण किया और बिना सद्भाव के बरामदा निर्माण को अंजाम दिया जो कि आवासीय भवन का विस्तार था। विबन्धन का उद्देश्य पराजित होगा यदि उक्त अवैधता को मान्यता दी जाती है और छूट दी जाती है ।[पैरा 20][298–सी–डी]

1.10 ऐसे मामले में जहां भूमि के मालिक ने मुकदमा दायर किया है अतिक्रमणकारी से उसकी भूमि पर कब्ज़ा वापस लेने और एक बार वह अपना मालिकाना हक स्थापित कर लेता है , तो केवल इसलिए कि कुछ संरचनाएँ हैं वह भी आपत्ति को नजरअंदाज कर विरोधी पक्ष द्वारा खड़ा कर दिया गया वह भी बिना किसी सद्भाव के , तब पुनः प्राप्ति के राहत से इनकार करना कब्ज़ा किसी अतिचारी/अतिक्रमणकारी को किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उसकी संपत्ति खरीदने की अनुमति देने के समान होगा। ऐसी स्थिति में किसी भी कार्य या लोप द्वारा गलतबयानी के अभाव में , मात्र यह तथ्य की वादी द्वारा आपत्ति करने के बाद पुनः प्राप्ति के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में कुछ उचित समय लगा, कल्पना के किसी भी स्तर पर यह कारण नहीं हो सकता उसे कब्ज़ा वापस पाने की राहत से वंचित करने के लिए जब उसने अतिक्रमित भूमि पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया [पैरा 21][299–डी–ई, एफ–जी]

1.11 उच्च न्यायालय के कानून के सारगर्भित प्रश्नों के निष्कर्षों में कोई दोष, कानूनी त्रुटि, विकृति या प्रत्यक्ष अवैधता नहीं पाया गया है। जिसके द्वारा अंततः, प्रतिवादी के पक्ष में और प्रथम अपीलीय अदालत के फैसले और डिक्री को खारिज कर दिया गया और ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री को बहाल किया गया। [पैरा22][299–एच; 300–ए]

जनक दुलारी देवी एवं अन्य. वी. कपिलदेव राय और अन्य.

(2011) 6 एससीसी 555 : [2011] 6 एससीआर 96; राम प्रकाश शर्मा बनाम बाबूलाल (2011) 6 एससीसी 449: [2011] 6 एससीआर 757; घीसालाल बनाम धापुबाई (2011) 2 एससीसी 298: [2011]

1 एससीआर 651; नेदुनुरी कामेश्वरम्मा बनाम संपति सुब्बाराव एआईआर 1963 एससी 884: [1963] एससीआर 208; आर.एस.मदनप्पा बनाम चंद्रम्मा AIR 1965 SC 1812: [1965] एससीआर 283; प्रतिमा चौधरी बनाम कल्पना

मुखर्जी एआईआर 2014 एससी 1304: [2014] 2 एससीआर 656;

बी.एल. श्रीधर बनाम के.एम. मुन्नीरेड्डी एआईआर 2003 एससी 578

: [2002] 4 सुपपल एससीआर 601; चेयरमैन , स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और अन्य. वी. एम.जे. जेम्स (2022) 2 एससीसी 301; अब्दुल
कादर बनाम उपेन्द्र 40 सी.डब्ल्यू.एन 1370; एन.सी. सुब्बय्या बनाम.
पट्टन अब्दुल्ला खान (1956) 69 एलडब्ल्यू (आंध्र) 52; बोदी
रेड्डी बनाम अप्पू गौंडन (1971) आईएलआर 2 मद्रास 155 –
उल्लिखित ।
केस कानून संदर्भ
[2011] 6 एससीआर 96 पैरा 3 को संदर्भित करता है
[2011] 6 एससीआर 757 पैरा 3 को संदर्भित करता है
[2011] 1 एससीआर 651 पैरा 3 को संदर्भित करता है
[1963] एससीआर 208 पैरा 12 को संदर्भित करता है
[1965] एससीआर 283 पैरा 12.1 को संदर्भित करता है
[2014] 2 एससीआर 656 पैरा 12.2 को संदर्भित करता है
[2002] 4 पूरक। एससीआर 601 पैरा 12.3 में संदर्भित है
(2022) 2 एससीसी 301 पैरा 13 को संदर्भित करता है
सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 6182–
2009 का 6183.
निर्णय एवं आदेश दिनांक 27.12.2007 एवं 27.03.2008 से
शिमला में हिमाचल प्रदेश के उच्च न्यायालय के आरएसए संख्या 276 में
क्रमशः 1996 और 2008 का सीआरपी नंबर 4।
सुश्री किरण सूरी, वरिष्ठ अधिवक्ता , एस जे अमिथ, सुश्री ऐश्वर्या कुमार,
कृष्ण कुमार, डॉ. (श्रीमती) विपीन गुप्ता, अधिवक्ता । अपीलकर्ताओं के लिए.
राजेश श्रीवास्तव, गौरव वर्मा, नीरज दत्त गौड़, अधिवक्ता।
प्रतिवादी के लिए
न्यायालय का निर्णय सुनाया गया
सी. टी. रविकुमार, न्या .
1. आर.एस.ए. 1996 का क्रमांक 276 में प्रतिवादी जो 1988 के सिविल सूट संख्या 70 अधीनस्थ न्यायाधीश की न्यायालय, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश की फाइल पर जो प्रतिवादी था इन विशिष्ट अनुमति अपील में मूल अपीलकर्ता है। जिसकी मृत्यु के बाद कानूनी उत्तराधिकारी स्वयं

अपीलकर्ता 1(ए) से 1(जी) के रूप में पक्षकार बन गये। पहला अपील आर.एस.ए. 1996 का क्रमांक 276 दिनांक 27.12.2007 में निर्णय और अंतिम आदेश के विरूद्ध निर्देशित किया जाता है और दूसरी अपील हिमाचल प्रदेश के उच्च न्यायालय, शिमला द्वारा सेकंड अपील 2008 की सिविल समीक्षा याचिका संख्या 4 में दिनांक 27.03.2008 के पारित आदेश के विरुद्ध निर्देशित है।प्रतिवादी (वादी) ने तालिमा के अनुसार 11 बिस्वांसी खसरा नंबर 994/1–ए/1 फटी ढालपुर, कोठी महाराजा, तहसील एवं जिला कुल्लू में शामिल जमीन के कब्जे के लिए और उस पर बने ढांचे को ध्वस्त करने के लिए और प्रतिवादी (यहां अपीलकर्ता) को हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा हेतु विवादित भूमि और उससे जुड़ी अन्य भूमि पर 1988 में सिविल सूट नंबर 70 दायर किया

एवं। मुकदमा में यह आदेश दिया गया कि प्रतिवादी/वादी को विवादित भूमि का मालिक घोषित किया गया और अतिक्रमित भूमि पर खड़ी संरचनाओं को ध्वस्त करने के बाद उसे सौंप दिया जाएगा मूल अपीलकर्ता/प्रतिवादी ने अपील में मामला उठाया। 1992 के सिविल अपील क्रमांक 9 के निर्णय के अनुसार स्वामित्व और अतिक्रमण के प्रश्न पर निष्कर्ष की पुष्टि की गई। बहरहाल, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने निर्णय और डिक्री को संशोधित किया और स्वीकृति के सिद्धांतों के आधार पर यह माना कि वादी/प्रतिवादी विध्वंस के बाद 11 बिस्वाँसी भूमि का कब्ज़ा वापस पाने का हकदार नहीं है। नतीजतन, वह उस राहत के बदले मुआवजे के रूप में मुकदमा दायर करने के समय प्रचलित बाजार मूल्य की डिक्री की हकदार पाई गई और उसके लिए मुआवज़ा 5500/– रुपये निर्धारित किया गया था।और उक्त राशि से ऊपर, प्रतिवादी (वादी) को मुकदमा दायर करने के दिनांक से लेकर वसूली तक 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज वसूलने का हकदार है ठहराया गया। यहां प्रतिवादी द्वारा मुकदमे के फैसले और डिक्री के संशोधन को चुनौती देते हुवे 1996 का आरएसए नंबर 276 दायर किया गया। निर्णय दिनांक 27.12.2007, के द्वारा उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को स्वीकार किया और प्रथम अपीलीय न्यायालय के कब्जे की पुनः प्राप्ति के बदले प्रतिवादी को मुआवजा के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया और विध्वंस और अतिक्रमित भूमि का कब्जा सौंपने के ट्रायल कोर्ट के निर्णय और डिक्री दिनांक 18.01.1992 को पुनः स्थापित किया ।

अपीलकर्ता की 2008 की सिविल पुनः निरीक्षण याचिका संख्या 4 दायर की गई जो उक्त द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 27.03.2008 के अनुसार खारिज कर दी गई । इसलिए, ये अपीलें।

2. सुश्री किरण सूरी, अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री राजेश श्रीवास्तव, प्रतिवादी के विद्वानअधिवक्ता को सुना ।

3. उपरोक्तानुसार तथ्यों का संक्षिप्त विवरण इसे पूरी तरह से स्पष्ट है बनाता है कि ट्रायल कोर्ट प्रथम अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय के भूमि के स्वामित्व के प्रश्नों पर समवर्ती निष्कर्ष हैं,अर्थात् प्रश्नाधीन,11 बिस्वांसी भूमि,जैसा कि ऊपर वर्णित है और मूल अपीलकर्ता द्वारा इसका अतिक्रमण। उक्त परिस्थितियों में, हमें अच्छी तरह से स्थापित न्यायिक सिद्धांत कि समवर्ती निष्कर्ष के आधार पर भारत के संविधान की अनुच्छेद 136 के तहत अपील में किसी वैध आधार के अभाव में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती है अतः स्वामित्व और अतिक्रमण के प्रश्नों पर तथ्यात्मक रूप से फिर से विचार करने का कोई कारण नहीं मिलता है। (जनक दुलारी देवी और अन्य बनाम कपिलदेव राय एवं अन्य, राम प्रकाश शर्मा बनाम बाबूलाल एवं घीसालाल बनाम धापुबाई के निर्णय देखें)

4. 1996 का आरएसए नंबर 276 यहां पे प्रतिवादी/वादी द्वारा दायर किया गया था,उचित रूप से, ट्रायल कोर्ट के खसरा नंबर 994/1–ए/1 में 11 बिस्वांसी जमीन पर ध्वस्तीकरण कर व कब्जा सौंपने के फैसले और डिक्री को रद्द करने के खिलाफ और यह फैसला देना कि उसके एवज में वह मुकदमा दाखिल करने के समय प्रचलित बाजार मूल्य और ब्याज रु.5500/– की मूल्यांकित राशि पर 12% प्रति वर्ष की दर से मुकदमा दायर करने की तारीख से उसके साकार होने तक मुआवजे की डिक्री पाने की हकदार है। इस संदर्भ में, यह प्रासंगिक है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के स्वामित्व और अतिक्रमण पर समवर्ती निष्कर्ष हैं और अतिक्रमण के इनकार को अस्वीकार करते हुए मुआवजा भुगतान का आदेश दिया और मूल अपीलारथी ने न तो कोई स्वतंत्र अपील दायर किया और न ही क्रॉस अपील।

5. संक्षेप में, उपरोक्त कारणों से, विचार का दायरा इन अपीलों में इस सवाल तक ही सीमित रहना है कि क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए संशोधन का उच्च न्यायालय द्वारा किए गए उलटफेर में भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत प्रदत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप की आवश्यकता है ?

6. अपीलकर्ताओं के अनुसार, प्रतिवादी ने यहां कोई आपत्ति नहीं जताई और भूमि पर किए गए निर्माण के विरुद्ध सिवल परिवाद का सहारा समयावधि के भीतर नहीं लिया और इसलिए उसे संरचना के विध्वंस के बाद संबंधित भूमि की पुनः प्राप्ति से रोका जाना चाहिए । यह सच है कि मूल अपीलकर्ता ने भी एक तर्क दिया था कि उसने निर्माण को इस सदभाव के विश्वास के आधार पर प्रभावित किया था कि वह अपनी जमीन पर निर्माण कार्य कर रहा था और इसलिए,

प्रश्नगत भूमि पर उसके द्वारा किया गया निर्माण धारा 51 संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (इसके बाद, 'टीपी अधिनियम') के तहत संरक्षित है। यह तर्क
अपीलकर्ताओं द्वारा प्रयोग में लगाया गया।

7. शुरुआत में ही हम कह सकते हैं कि हमारे विचार में अपीलकर्ताओं का तर्क का धारा 51 टीपी एक्ट पर आधारित होना पूरी तरह से अनुपयुक्त और सही नहीं है ।यह तब पता चलता है जब इन अपीलों में उठाये गये आधार 'बी' को आधार 'डी' से मिलान करते हैं । उल्लेखनीय रूप से, अपीलकर्ता प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री द्वारा कारित संशोधन के रद्द करने को चुनौती दे रहे है और विबन्धन के सिद्धांत और टीपी अधिनियम की धारा 51 पर आधारित तर्कों द्वारा संशोधन को कायम रखने का प्रयास कर रहे है। वैचारिक रूप से, धारा 51, टीपी अधिनियम और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 115 के तहत विबन्धन का सिद्धांत परस्पर विरोधी हैं और सह–अस्तित्व में नहीं रह सकते। टीपी अधिनियम की धारा 51 इस प्रकार है:–

"51. दोषपूर्ण अधिकार धारकों द्वारा सदभावनावश किए गए द्वारा किए गए सुधार कार्य .–
जब अचल संपत्ति का हस्तांतरी सदभावनापूर्वक संपत्ति पर कोई भी सुधार करता है यह विश्वास करते हुए हुए कि वह इसका पूर्णतः हकदार है, और बाद में बेहतर अधिकार वाले किसी व्यक्ति द्वारा, उसे वहां से बेदखल कर दिया जाता है तब उसे बेदखल कराने वाले व्यक्ति से यह अपेक्षा करने का अधिकार है कि वह किए गए सुधार कार्य का मूल्यांकन कर हस्तांतरी को भुगतान करे या वचन दे या हस्तांतरी को संपत्ति में अपना अधिकार सुधार कार्य के मूल्य को देखे बिना तत्कालीन बाजार भाव पर विक्रय करें। उक्त सुधार के लिए जो भी रकम दिया जाएगा या देने का वचन दिया जाएगा उसका मूल्यांकन बेदखली के समय किया जाएगा । जब उपरोक्त परिसतिथियों में, हस्तांतरी ने संपत्ति में फसल लगाई या जगाई है जो उसके बेदखली के समय उग रहे है तब वह ऐसी फसलों का हकदार है और उन्हे इकट्ठा करने और ले जाने के लिए मुक्त प्रवेश का हकदार है।

8. धारा 51, टीपी अधिनियम के अवलोकन से पता चलेगा कि उसमें अधिनियमित इक्विटी की प्रवर्तनीयता के लिए पूर्व–आवश्यकताएँ संतुष्ट होने के बाद भी उक्त धारा के तहत दिए गए दो विकल्पों में से एक के चुनाव का अधिकार अभी भी बेदखल करने वाले व्यक्ति के पास रहेगी। दूसरे शब्दों में वह, प्रतिवादी से जो इस धारा के प्रयोजन के लिए "हस्तांतरी " के विवरण को संतुष्ट करता है, के द्वारा किए गए सुधारों के मूल्य का भुगतान कर जमीन ले सकता है या संपत्ति

में अपना हक हस्तांतरी को बाजार मूल्य पर बेच सकता है । चाहे संपत्ति में किए सुधार का मूल्य कुछ भी हो।

9. धारा 51, टीपी अधिनियम का एक सामान्य प्रावधान है जिसका संबंध हस्तांतरित संपत्ति में हस्तांतरी द्वारा उक्त प्रावधान के अंतर्गत विशेष रूप से प्रदान किया गये प्रणाली द्वारा किए गए सुधार से है । इस प्रकार, धारा 51, टीपी अधिनियम के अवलोकन मात्र से यह प्रकट होता है कि उक्त प्रावधान के प्रयोजन के अंतर्गत ' प्राप्त करने के अधिकार' हेतु उसमे दिए तरीके के तहत एक व्यक्ति को टीपी अधिनियम के 'हस्तांतरी ' की परिभाषा में आना चाहिए। संक्षेप में, धारा 51 उस हस्तांतरी के संदर्भ में लागू होती है जिसने किसी संपत्ति को उसके स्वयं का मानते हुए सद्भावनावश सुधार कार्य किया जाता है । इस संदर्भ में, , विरोधाभासी प्रतीत होने वाले अपील में उठाए गए आधार 'बी' और 'डी' संदर्भित करने योग्य हैं और वे है :–

अपील में आधार 'बी' और 'डी' इस प्रकार हैं:–'बी' "कि

माननीय उच्च न्यायालय ने रोक, माफी , को लिखित बयान का कथन माना । याचिकाकर्ता ने अपने जवाब दावे में विशेष रूप से प्रतिपादित किया है कि है

अंतर्गत: –

"प्रतिवादी ने बगल की जमीन और विवादित जमीन पर घर के साथ बरामदा का निर्माण किया और इसे पूरा सितंबर, 1986 में किया । उस समय, न तो वादी न ही उसके पति जो बाजू के रघुनाथपुर में रहते थे ने प्रतिवादी की भूमि पर कोई आपत्ति उठाई।

रोक की वह दलील स्पष्ट रूप से पक्षकारों के दलीलों में, उनके आचरण में, मौखिक और साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य से स्थापित होता है । उक्त मुद्दे को मुकदमे के समय उठाया गया था इसलिए,विबन्धन की दलील कानून का मुद्दा होने के नाते कभी भी सुनवाई के लिए किसी भी समय नहीं उठाई जा सकती । नहीं हो सकती

'डी'। याचिकाकर्ता को सद्भावनापूर्वक यह विश्वास था कि उसने अपनी खुद की जमीन पर निर्माण कर लिया है और याचिकाकर्ता द्वारा किया गया निर्माण टीपी अधिनियम की धारा 51 के आधार पर संरक्षित है। याचिकाकर्ता ने सद्भावनापूर्वक दोषपूर्ण मालिकाना हक के तहत कार्य किया है और इसलिए पिछले 20 साल से मुकदमा लड़ रहा है इस विश्वास पर कि उसने अपने भूमि पर निर्माण किया है, लेकिन अंततः कई सीमांकन के बाद, एक गवाह ने 9 बिस्वाज़ की सीमा तक अतिचार पाया गया जबकि दूसरे ने इसे 11 बिस्वासी पाया। हालाँकि, यह मानना पड़ेगा कि इसमें शामिल क्षेत्र बहुत छोटा है और अतिक्रमण जानबूझकर नहीं है और इसलिए, टीपी अधिनियम की धारा 51 मामले के तथ्य और परिस्थितियों में लागू होगी ।"

10. मूल अपीलकर्ता यह स्थापित करने में विफल रहा है कि वह टीपी अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत और धारा 51 के प्रयोजन के लिए एक "हस्तांतरी " है ।
टीपी अधिनियम के प्रावधान को आकर्षित करने के लिए भूमि के अधिभोगी को स्वामित्व के रूप में कब्ज़ा होना चाहिए, उसका कब्ज़ा केवल दूसरे के कब्जे से नहीं होना चाहिए बल्कि असली मालिक के स्वामित्व के प्रतिकूल होना चाहिए और उसे दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि प्रश्नगत संपत्ति पर उसने पूर्ण स्वामित्व प्राप्त किया है और वह उसका मालिक है। संक्षेप में, धारा 51 उपरोक्त तीन चीजों को केवल वैधानिक मान्यता देती है। साथ ही, मौजूदा मामले में, प्रश्न के समवर्ती निष्कर्ष
और नीचे की अदालतों का मानना यह है कि यहां प्रतिवादी भूमि का मालिक है
और मूल अपीलकर्ताओं ने इसका अतिक्रमण किया और उस पर निर्माण कारित किया। यहां अपीलकर्ता उपरोक्त तीन बातों को स्थापित करने में विफल रहे हैं। रिकार्ड में मौजूद साक्ष्य भी यह दिखा रहे हैं कि निर्माण भी स्वीकृत योजना से हटकर किया गया।
11. समवर्ती निष्कर्षों के आलोक में स्वामित्व और अतिक्रमण के प्रश्नों पर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह केवल माना जा सकता है कि यह विचाराधीन भूमि पर अतिक्रमण करने और मालिकाना हक के अभाव को अनदेखी करने के बाद उसने अपने जोखिम पर संरचनाएँ बनाईं। एक बार ऐसा पाया गया तो मूल अपीलकर्ता कोटीपी अधिनियम के अर्थ और धारा 51, टीपी अधिनियम के प्रयोजन के लिए 'हस्तांतरी ' के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए विध्वंस और कब्जे के संबंध में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए संशोधन के बहाली के संबंध में हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि अपीलकर्ता धारा 51, टीपी अधिनियम के तहत प्रावधान का आश्रय पाने का हकदार नहीं है। अपीलकर्ताओं का, प्रतिकूल कब्जे की दलील नहीं लेना, ठीक है और परिस्थितियों में, धारा 51 टीपी अधिनियम के प्रयोजन के लिए हस्तांतरी नहीं होना से उसे कानूनी रूप से प्रतिवादी से या तो सुधार का मूल्य या जमीन वापस नहीं मिल सकती और ना ही सुधारों के मूल्य की परवाह किए बिना बाजार मूल्य में जमीन उससे खरीद सकता है।
12. अब, जिस बात पर विचार किया जाना बाकी है वह यह है कि क्या अपीलकर्ता
इसमें/प्रतिवादी ने विबंधन की अपनी दलील दी है और साबित की है। अपीलकर्ताओं का तर्क है कि विबंधन का प्रश्न तय नहीं किया गया है और यह मुद्दा तथ्यों एवं परिस्थितियों की दृष्टि से और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर भी मामले में घातक नहीं है। इस तर्क को सहारा

देने के लिए अपीलकर्ता नेदुनुरी कामेश्वरम्मा बनाम संपति सुब्बा राव में पारित इस न्यायालय के निर्णय का सहारा लेते हैं। उक्त निर्णय का प्रासंगिक आख्यान
पैराग्राफ 5 इस प्रकार है:–
"5. ...निस्संदेह, कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था, और एक, जो था उसे और अधिक विस्तृत किया जा सकता था; लेकिन चूंकि दोनों पक्ष मुकदमे में प्रतिद्वंद्वी के मामले को पूरी तरह से जानते हुए गए और साक्ष्य न केवल उनके तर्कों के समर्थन में बल्कि दूसरे पक्ष की बातों का खंडन करते हुए प्रस्तुत किया अतः यह नहीं कहा जा सकता कि किसी मुद्दे की अनुपस्थिति मामले के लिए घातक थी, या
यह गलत मुकदमा कार्यवाही को दूषित करता है। इसलिए, हमारी राय यह है कि इस संकीर्ण आधार पर मुकदमा खारिज नहीं किया जा सकता और यह भी कि चूंकि मामले में जो साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं, वे सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त हैं अतः वापस भेजने की आवश्यकता नहीं है । "उपरोक्त उद्धरण से पता चले कानून की स्थिति पर विवाद नहीं किया जा सकता। दरअसल, इसी कारण से विवाद विबंधन के सिद्धांत पर आधारित हम इस पर विचार करने को इच्छुक हैं हैं। निस्संदेह स्थिति यह है कि हम तुरंत यह जोड़ सकते हैं कि जैसा भी मामला हो विबंधन की की अवधारणा को लागू करने के लिए प्रतिवादी को प्रत्येक कार्य या चूक के बारे में विशेष रूप से दलील देनी होगी, जो कि वादी की ओर से निरूपण दर्शाये । उक्त प्रश्न के गहराई में जाने से पहले विबंधन की अवधारणा के संबंध में निश्चित स्थिति का प्रतिपादन जान लेना उचित होगा।
12.1 आर.एस. मदनप्पा बनाम चंद्रम्मा के निर्णय में इस न्यायालय ने विबन्धन के विषय पर विचार किया। यह माना गया कि इसका उद्देश्य है धोखाधड़ी को रोकना और पक्षों के बीच ईमानदारी और नेक नियति को बढ़ावा देकर न्याय सुनिश्चित करना। इसलिए, आगे यह माना गया कि जब एक पक्ष दूसरे को तथ्य का निरूपण करता है तब वह विबन्धन के नियम द्वारा रोका नहीं जाएगा अगर दूसरा वास्तविक स्थिति को जानता है और इसके परिणामस्वरूप ग़लतबयानी से गुमराह नहीं हुआ।
12.2 प्रतिमा चौधरी बनाम कल्पना मुखर्जी के निर्णय में साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 पर विचार करते समय, इस न्यायालय ने कहा कि विबन्धन के नियम को लागू करने से पहले चार मुख्य शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए । सबसे पहले, एक पक्ष दूसरे पक्ष को तथ्यात्मक निरूपण देता है। दूसरा , द्वितीय पक्ष उपरोक्त तथ्यात्मक निरूपण को स्वीकारकरता है और पर भरोसा करता है ।

तीसरा, उपरोक्त तथ्यात्मक निरूपण पर भरोसा कर, दूसरे पक्ष अपनी स्थिति बदलता है । चौथा, इस परिवर्तन से ऐसी स्थिति निर्मित होनी चाहिए कि उसे मूल स्थिति में वापस लौटाना अन्यायपूर्ण हो । ऐसा धारण करने के बाद, आगे यह माना गया कि विबन्धन का सिद्धांत तभी लागू होगा जब पहले पक्ष के अभ्यावेदन के आधार पर, दूसरा पक्ष अपनी स्थिति, इस प्रकार बदल देता है कि प्रारंभिक स्थिति को पुनर्स्थापित करना अनुचित होगा।

12.3 बी.एल. श्रीधर बनाम के.एम. मुन्नीरेड्डी के निर्णय में इस न्यायालय ने माना कि जब अधिकारों का आह्वान किया जाता है तब विबन्धन का वर्णन साक्ष्य के नियम और अधिकार के निर्माण और लोप दोनों के रूप समान हो सकती है।

अपीलकर्ता विशेष रूप से इस निर्णय के पैराग्राफ 30 पर निर्भर है और यह इस प्रकार है:–

"30. यदि किसी ने शब्दों से या आचरण से सूचित कर दिया हो कि वह किसी कार्य के लिए सहमति देता है जो किया गया है और वह इसका कोई विरोध नहीं करेगा , हालाँकि ऐसा उसकी सहमति के बिना कानूनी रूप से नहीं किया जा सकता , और वह इस तरह दूसरों को प्रेरित करता है जिसे अन्यथा वे टाल सकते थे तब, वह अपने कृत्य की वैधता पर सवाल नहीं उठा सकता जिससे उन लोगों पे प्रतिकूल असर पड़े जिन्होंने उसकी बातों को मान कर या उसके आचरण को समझ कर कार्य किया । यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त निर्णय में इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि किसी क़ानून द्वारा स्पष्ट रूप से अस्वीकार की गई कानूनी स्थिति को विबन्धन के द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है।

13. अपीलकर्ता ने चेयरमैन , भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य. वी. एम.जे. जेम्स में पारित इस न्यायालय के निर्णय का भी आश्रय लिया है विशेष रूप से, पैराग्राफ 39 जो इस प्रकार है:–

"39. आगे बढ़ने से पहले "स्वीकृति" और "विलंब और देरी" के बीच का अंतर स्पष्ट करना जरूरी है। सहमति का सिद्धांत एक न्यायसंगत सिद्धांत है यह तब लागू होता है जब अधिकार रखने वाला कोई पक्ष खड़ा होकर देखता है जबकि, दूसरा उस अधिकार के साथ असंगत तरीके से व्यवहार कर रहा है जब उक्त कार्य प्रगति पर है और उल्लंघन के बाद पूरा हो गया है, जो आचरण उसकी सहमति या सहमति को दर्शाता है। वह बाद में शिकायत नहीं कर सकता। शाब्दिक अर्थ में, स्वीकृति शब्द का अर्थ मौन सहमति, मौन सहमति, सहमति, या स्वीकृति, जो ऐसे आचरण को दर्शाता है जो किसी पक्ष के न्यायसंगत अधिकार को त्यागने के इरादे का सबूत है और साथ ही आचरण को दर्शाता है जिससे किसी अन्य पक्ष द्वारा ऐसे इरादे का अनुमान लगाना उचित होगा। स्वीकृति या तो पूर्ण जानकारी और व्यक्त अनुमोदन, के साथ प्रत्यक्ष हो सकती है या अप्रत्यक्ष जहां कार्रवाई को रद्द करने का अधिकार रखने वाला व्यक्ति

खड़ा रहता है और और दूसरे को उस अधिकार के साथ असंगत व्यवहार करते हुए देखता है और उल्लंघन के बावजूद कोई कार्रवाई नहीं करता है जिससे स्वीकृति का प्रतिबिंब दिखता है. हालाँकि, स्वीकृति वहाँ लागू नहीं होगी जहां समय का कोई महत्व या परिणाम नहीं है।" ऊपर बताई गई स्थिति इस मामले के तथ्यों के संदर्भ में निश्चित रूप से विचार करने का मांग करती है। इस संबंध में तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में, हमें विचार करना होगा कि क्या प्रतिवादी की ओर से सहमति थी और यदि हां, तो उसके तहत दी गई व्याख्या कि यदि समय व्यतीत होने का कोई महत्व नहीं है तो यह स्वीकृति लागू नहीं होगी को ध्यान में रखते हुए कि क्या समय की चूक, यदि कोई हो, का कोई महत्व या परिणाम है या नहीं है।

14. निर्णय के शृंखला में कानून के प्रतिपादन से यह स्पष्ट है कि इक्विटी कानून का पालन करेगी और इसके पक्ष में झुक जाएगी कानून और इसके अलावा इक्विटी का दावा करने के लिए पार्टी को पिछला स्पष्टीकरण देना होगा।

15. इसके अलावा, सिद्धांत पर कानून का प्रतिपादन भी ध्यान में रखते हुए विबन्धन के संबंध में हमें प्रकरण के दस्तावेज के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देना होगा। मूल अपीलकर्ता का मामला यह है कि वह अपने आवासीय घर के एक हिस्से बरामदे का निर्माण विवादित भूमि पर सद्भावनापूर्वक यह मानते हुए कि वह उसकी अपनी भूमि है वर्ष 1986 में प्रतिवादी के खरीदने के पहले कराया था। यह तर्क सहमति के तर्क से असंगत है चूंकि आधार 'बी में यह तर्क अंतर्निहित है कि प्रतिवादी चुप रहा और इस तरह, प्रतिवादी को अपनी जगह बदलने के लिए और भूमि पर निर्माण कार्य को आगे बढ़ाने के सहमति के लिए एक अभ्यावेदन दिया।

दरअसल, मूल अपीलकर्ता ने इसके तहत यह तर्क दिया था कि न तो वादी (यहां प्रतिवादी) और न ही उसका पति जो उसकी जमीन से सटे रघुनाथपुर में रहते थे ने निर्माण दौरान कोई आपत्ति नहीं जताई थे। जाहिर है, यह तर्क बगुलाभगत सा है क्यूंकि पूर्ववर्ती वाक्य में कहा गया है कि उसने 1986 के सितंबर महीने में उसने जमीन पर घर के साथ–साथ बरामदे का निर्माण भी पूरा कर लिया है जबकि, स्वीकार्य रूप से, प्रतिवादी ने जमीन वर्ष 1987 में ही खरीदी थी। लेकिन निचली न्यायालयों द्वारा निपटाए गए मामले के अभिलेख में दर्ज साक्ष्य से पता चलेगा, कि यहां के प्रतिवादी ने मूल अपीलकर्ता द्वारा विचाराधीन भूमि में निर्माण कार्य कराए जाने पर आपत्ति जताई थी। रिकार्ड से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी ने अपीलकर्ता को निर्माण रोकने के लिए दिनांक 22.09.1987 को टेलीग्राफिक नोटिस प्रदर्श PW–18/A भेजा। यह भी रिकॉर्ड में है कि वह पति के माध्यम से उपायुक्त के समक्ष प्रदर्श पीडब्लू–12/ए के अंतर्गत. 0.12.1987 को शिकायत की और तत्कालीन तहसीलदार, कुल्लू, पीडब्लू–12 द्वारा

12.01.1988 को वाद भूमि निरीक्षण के अनुसार जिसके परिणामस्वरूप अंततः एक रिपोर्ट सामने आई। इसके बाद 11.05.1988 को मुकदमा स्थापित किया गया।

16. प्रासंगिक रूप से, यह ध्यान रखने योग्य है कि कि ट्रायल कोर्ट ने तथ्यात्मक स्थिति पर ध्यान दिया कि विशिष्ट तर्क उठाने के बावजूद कि वह बरामदे सहित आवासीय मकान का निर्माण वर्ष 1986 में हुआ था परंतु अपीलकर्ता ने कथित तथ्य को स्थापित करने के लिए स्थानीय निकाय से प्रश्नगत भूमि पर निर्माण सहित भवन का पूर्णता प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था ।

17. हमारा सुविचारित मत है कि जब प्रथम अपीलीय कोर्ट ने प्रदर्श पीडब्लू–18/ए दिनांक 22.09.1987 और प्रदर्श PW–12/A दिनांक 10.12.1987 को ध्यान दिया। उसे इन निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना था जो कि रिकॉर्ड से स्पष्ट हैं और ट्रायल कोर्ट द्वारा विधिवत विचार किया गया। सबसे पहले, स्वीकृति के सिद्धांत के अनुप्रयोग का प्रतिपादन करने वाले पक्ष होने के कारण इस तथ्य को स्थापित करने का भार मूल अपीलकर्ता पर है कि प्रतिवादी ने अपने कानूनी अधिकार के उल्लंघन को स्वीकार कर लिया था और फिर भी खड़ा रहा और निर्माण की अनुमति दे दी। उस लिहाज से इस पर गौर करना चाहिए कि दावा करने के बावजूद कि वर्ष 1986 में स्वीकृत योजना अनुसार प्रश्नाधीन जमीन पर निर्माण अपनी भूमि पर आवासीय भवन के निर्माण के समय किया गया था परंतु वह यह स्थानीय प्राधिकारी से प्रमाण पत्र स्थापित करने में विफल रहा. दूसरा, यदि उस तर्क को सच मान लिया जाए, तब वह सहमति के तर्क को प्रतिवादी के विरुद्ध नहीं चला सकता क्योंकि उसका यह मामला भी था कि प्रतिवादी ने प्रश्नगत भूमि केवल वर्ष 1987 में खरीदा था। तीसरा यह कि प्रतिवादी की ओर से मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी साक्ष्य से इस बात का खुलासा खुलासा करते है कि किसी भी मालिकाना हक के अभाव में, कम से कम दोषपूर्ण हक के अभाव में "निर्माण कार्य कराने" पर आपत्ति के कारण अपीलकर्ता अपने भवन निर्माण कार्य को सद्भावपूर्वक करने का दावा नहीं कर सकता। उक्त परिस्थितियों में, मुक़दमा स्थापित करने में देरी, विशेषकर तब जब यह निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर ही दायर किया गया हो तब इसे स्वीकृति के समान नहीं माना जाना चाहिए। जैसा यहां पहले देखा गया, प्रतिवादी ने टेलीग्राफिक संदेश को 22.09.1987 भेजने के बाद उपायुक्त से संपर्क किया यहां देखा और अंततः मूल अपीलकर्ता द्वारा अतिक्रमण का खुलासा करने वाली रिपोर्ट 10.12.1987 को प्राप्त हुई और फिर, 11.05.1988 को मुकदमा लाया। इन परिस्थितियों में यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने मूल अपीलकर्ता के खिलाफ तुरंत कार्यवाही नहीं किया है और अतिक्रमित भूमि पर अपना स्वामित्व एक मुकदमे से

समय सीमा की निर्धारित अवधि के भीतर स्थापित करने के बाद भी उसे हमेशा के लिए अतिक्रमणकारी से उसकी जमीन पर कब्जा वापस लेने के अधिकार को जताने से रोकी जानी चाहिए।

18. ऊपर बताए गए स्थिति एवं परिस्थितियों के चलते अब्दुल कादर बनाम उपेन्द्र के निर्णय का उल्लेख करना उचित है जिसमे यह पाया गया कि सहमति के मामले में अभ्यावेदन को निःशब्दता, से अनुमान लगाया जा सकता है, लेकिन केवल निःशब्दता से , मात्र निष्क्रियता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता इसे एक निरूपण माना जाता है और एक निरूपण के लिए इसे जिन परिस्थितियों में कर्तव्य की आवश्यकता होती है, उसमें निष्क्रियता या मौन रहना चाहिए या जहां बोलने का कर्तव्य है वहाँ मौन धरण करना धोखाधड़ी या धोखा है।

19. इस स्थिति के संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि निबंधन समानता पर आधारित एक सिद्धांत है और जैसा कि मदनप्पा के मामले में न्यायालय ने माना है कि निबंधन का उद्देश्य केवल पक्षकारों को बचाना और न्याय दिलाना है। सिद्ध परिस्थितियों में जहां कि मूल अपीलकर्ता के पास उस संपत्ति का स्वामित्व नहीं था तब प्रतिवादी ही विचाराधीन भूमि का मालिक है, यह कि समवर्ती निष्कर्ष यह है कि मूल अपीलकर्ता अतिक्रमणकर्ता था और आगे प्रतिवादी द्वारा निर्माण के खिलाफ आपत्ति उठाई गई थी, उसे स्वीकृति के नियम द्वारा या निबंधन के नियम द्वारा मूल अपीलकर्ता को निरूपण देने से यह विश्वास दिलाने के लिए कि निर्माण हेतु सहमति प्रदान की गई बाहर नहीं करना चाहिए।

20. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से उजागर हुई सारी परिस्थितियाँ इस तथ्य को स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी के भूमि पर अतिक्रमण किया था और बिना प्रामाणिकता के बरामदे का निर्माण कराया जो आवासीय भवन का विस्तार है। जैसा कि मदनप्पा के मामले में माना गया था, विबन्धन का उद्देश्य विफल हो जाएगा यदि उक्त अवैधता को मान्यता दी जाती है और उसके लिए छूट दी जाती है । प्रासंगिक स्थिति में, आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय एन.सी. सुब्बैया बनाम पट्टन अब्दुल्ला खान को विद्वान एकल न्यायाधीश मद्रास उच्च न्यायालय बोडी रेड्डी बनाम अप्पू गौंडन के फैसले में सहमति व्यक्त की गई जो ध्यान देने योग्य है।

आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने एक प्रश्न पूछने के बाद क्या अदालत के पास पूर्ण स्वविवेक है अनिवार्य निषेधाज्ञा के बजाय हर्जाना देने का जहां प्रतिवादी द्वारा वादी के भूमि पर अतिक्रमण किया गया है? " निर्णय में यह माना गया कि :–

“कहने के लिए ऐसी परिस्थितियों में इमारत का निर्माण होने पर हटाने का निर्देश नहीं दिया जाएगा और केवल नुकसान की भरपाई हो सकती है, मेरी राय में दी गई ऐसी मंजूरी अप्रभावी होगी, वादी की संपत्ति का तिरस्कार प्रतिवादी के उपयोग के लिए इसका विनियोग... राहत को मुआवजा तक सीमित रखना ऐसे मामले में मुआवजा लेकर किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति को उसके बदले में किसी को अतिक्रमण कर खरीदने के लिए अनुमति देने के समान है। किसी भी व्यक्ति को अपनी संपत्ति बेचने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को उसके बटुए की लंबाई और हर्जाना चुकाने की उसकी क्षमता पर भरोसा करके गलत कार्य करने या अतिचार करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि निर्माण स्थल की एक छोटी सी पट्टी किसी अतिक्रमी द्वारा विनियोजित किया जाता है इस प्रकार हो सकती है जैसे कानून के शासन को स्वीकार कर असीमित रूप से लागू किया जाये । अतिचार के मामलों में, न्यायालय आम तौर पर प्रतिवादी को निषेधाज्ञा का निर्देश देते हुए अतिक्रमण हटाकर वादी को रिक्त स्थान का कब्जा वापस दिलाया जाना चाहिए ।

प्रतिवादी–अतिक्रमणकर्ता को हो रही गंभीर असुविधा और वादी को कोई गंभीर नुकसान के अभाव में भी वादी को उसके संपत्ति पर कानूनी अधिकार से वंचित करने का कोई आधार नहीं है।

21. सच है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे कहा कि यदि वादी सहमति देने के बराबर लापरवाही का दोषी है या जानबूझकर प्रतिवादी को निर्माण करने की अनुमति दी और उसे विरोध या आपत्ति के बिना भारी व्यय, करवाया तो अनिवार्य निषेधाज्ञा अस्वीकार किया जा सकता है और हर्जाना दिया जा सकता है। जैसा कि विद्वान एकल न्यायधीश का मानना है कि ऐसे मामले में जहां भूमि के मालिक ने अपनी भूमि पर कब्ज़ा वापस पाने के लिए मुकदमा दायर किया हो और एक बार जब वह अपना मालिकाना हक स्थापित कर लेता है, केवल इसलिए कि विरोधी पक्ष द्वारा आपत्ति को नजरअंदाज कर कुछ ढांचा खड़ा कर दिया जाता है वह भी बिना किसी सद्भावी विश्वास के,तब कब्जे की बहाली की राहत देने से इनकार करना किसी अतिचारी/अतिक्रमणकारी को किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उसकी संपत्ति ख़रीदने की अनुमति देने के समान होगा। बोडी रेड्डी के निर्णय (उपर्युक्त) में विद्वान न्यायाधीश ने माना कि मुकदमा कब्जे वापसी के लिए है जिसे परिसीमा अधिनियम के अंतर्गत प्रदान की गई परिसीमा अवधि के भीतर दायर किया गया और , अनुचित देरी या सहमति के सिद्धांत द्वारा

अपना स्वामित्व स्थापित करने पर राहत प्राप्त करने के वादी के अधिकार को पराजित करने के लिए कोई जगह नहीं है।

हम यह मान सकते है कि ऐसी स्थिति में किसी कार्य या लोप द्वारा किसी भी गलत बयानी के अभाव में यह माना जा सकता है इस तथ्य मात्र से कि वादी द्वारा आपत्ति करने के बाद कब्जा वापसी के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में कुछ उचित समय लगा कल्पना के किसी भी स्तर पर उसे अतिक्रमित भूमि पर कब्ज़ा वापस पाने की राहत इनकार करने का कारण नहीं हो सकता जब उसके के द्वारा उ स पर अपना हक स्थापित कर लिया गया है ।22. उपरोक्त सभी परिस्थितियों पर विचार करने पर हम उच्च न्यायालय द्वारा अंततः परिवादी के पक्ष में पाए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों के निष्कर्षों में और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द करने में और ट्रायल कोर्ट के निर्णय और डिक्री को बहाल करने में कोई दोष, कानूनी त्रुटि, विकृति या प्रत्यक्ष अवैधता नहीं पाते है ।

23. परिणामस्वरुप अपीलकर्ता असफल होने करने के लिए बाध्य हैं और अपील तदनुसार खारिज किया जाता है।

24. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

Checked and verified by Ashwin Panickar Advocate, Chhattisgarh